**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 2; Issue 3; May 2016; Page No. 54-55**

# भाषकालीन संस्कृति एवं समाज

**प्रदीप तिवारी**

Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, Bihar, India

**प्रस्तावना**

हिन्दू सामाजिक संगठन की दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्था आश्रमों से युक्त है, जो वर्ण व्यवस्था से सम्बन्धित है। 'आश्रम' शब्द की उत्पत्ति 'श्रम' धातु से हुई है जिसका अर्थ है परिश्रम या प्रयास करना। इस प्रकार आश्रम वे स्थान–विशेष है, जहाँ प्रयास किया जाता है। मूलतः आश्रम–जीवन की यात्रा में एक विश्राम स्थल का कार्य हैं जहाँ निरन्तर यात्रा के लिए विश्रामयुक्त तैयारी की जाती है। जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है। ईश्वर ने मोक्ष–प्राप्ति हेतु यात्रा में आश्रमों को विराम स्थल बताया है। आश्रम–व्यवस्था के मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक आधार पुरूषार्थ है। भारतीय समाज में आश्रम–व्यवस्था से अन्यतर रहस्यात्मक विषय ही द्योतित होती है। विचारणीय होने पर उसका प्रमुख हेतु निवृत्तिमार्ग से आत्मा की सांसारिक बन्धन से मुक्ति ही लक्षित होती है। प्राचीनयुग में विशेष वर्ग का ध्यान मोक्ष पर ही निवास करता था। अतः बाल्याकाल से ऋषिकुलों में उस प्रकार की ही विद्या प्रदान की जाती थी। अवान्तर प्रयोजन के रूप में प्रजा की उत्पत्ति एवं उसका संरक्षण धर्मानुसार शास्त्रीय पद्धति से विषयोपभोग आदि भी गृहीत हो सकते हैं।

आश्रम–पद्धति का विधान प्राचीन सनातन शास्त्रविदों ने व्यक्ति तथा समाज दोनों के सर्वांगीण विकास के लिए था "शतायुर्वै पुरुषः" इस वचन के अनुसार पुरुष की पूर्ण आयु जो 100 वर्ष निश्चित होती है जिसे 25–25 वर्षो के क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में बाँटा गया। व्यक्ति के भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग इन आश्रमों द्वारा अभिलक्षित होता था जहाँ प्राप्त शिक्षण के आधार पर व्यक्ति अपने जीवनकाल में आचरण युक्त होता था। अतः यह उचित ही है कि आश्रम मानव जीवन की शालायें हैं। आश्रमों के ही माध्यम से व्यक्ति अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के निर्वहन करता था। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थों का संतुलित एवं नियन्त्रित उपभोग प्राप्त करते हुए वह समाज का सहकारी सदस्य बन जाता था।

हिन्दू जीवन पद्धति में यह विशेषता थी कि जो विश्व के किसी भी अन्य देश के समाज में दुष्प्राप्य है। भारत के ब्रह्मचारियों, गृहस्थों, वानप्रस्थों की अपनी मौलिक गुण थे जैसा कि भारतीय सन्यासियों के ज्ञान एवं साधना शक्ति की प्रशंसा यूनानी तथा मुसलमान लेखक भी किये हैं। भारतीय सन्यासियों ने अपनी प्रतिभा से विश्व–विजयी सिकन्दर को भी सम्मोहित कर दिया था। विभिन्न आश्रमों को पालन करता हुआ व्यक्ति लौकिक एवं पारलौकिक समस्त सुखों से युक्त होता है। इस प्रकार समस्त लौकिक तथा पारलौकिक विषय को अन्तर्भुक्त किये हुए भारतीय आश्रम–व्यवस्था पूर्णतया वैज्ञानिक, तार्किक, व्यवहारिक तथा रहस्यात्मक थी। जिसका निर्माण वैदिक ऋषियों ने मानव जीवन को सुव्यवस्थित एवं सुसंस्कृत बनाने के लिये किया था।

भास के नाटकों में ब्रह्मचर्य आश्रम का उल्लेख "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक में प्राप्त है। वहाँ पर ब्रह्मचारी से, जो लावणक ग्राम का है, उससे यौगन्धरायण का संवाद यह ध्वनित करता है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्यार्थी निष्ठापूर्वक समस्त वेद–वेदांग दर्शन आदि विद्याओं का सम्यक् अभ्यास करके ही अन्यत्र जा सकता है–

**राजगृहतोऽस्मि! श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमि लावणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि।**

जैसा कि ब्रह्मचारी कहता है– "राजगृह से आया हूँ वेद का अध्ययन करने लिए, वत्सराज के राज्य में लावणक ग्राम में रहता हूँ।"

पुनः "क्या अध्ययन समाप्त हो गया? ऐसा यौगन्धरायण के पूछने पर उत्तर देता है– "नहीं", तब पुनः यौगन्धरायण कहताहै कि "यदि अध्ययन नहीं समाप्त हुआ तो यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?"

यौगन्धरायण की उक्त बात से स्पष्ट प्रतीत होता है कि "बिना अध्ययन समाप्त किये ब्रह्मचारी कहीं अन्यत्र नहीं जाता था।"

इस प्रकार भास के समय में भी वेदाध्ययन की पद्धति ब्रह्मचर्य आश्रम में प्राचीन रूप में परिलक्षित होती है, अन्तर सिर्फ इतना है कि प्राचीन काल में वनों में ही कोलाहल से रहित शान्त स्थान में विद्यार्थी गुरु के समीप रहता था और नियम पूर्वक विद्या अध्ययन करता था, किन्तु भास के समय तक आते–आते यह कार्य गाँव में ही सम्पन्न होने लगा था।

भासकृत नाटकों में गृहस्थ आश्रम का विशद विश्लेषण है। भास के नाटकों में गृहस्थ आश्रम की प्राचीन मान्यतायें विकसित रूप ले ली थीं। उनके नाटकों में भी द्विज अग्न्याधान करके उसकी रक्षा हेतु तत्पर रहते थे जैसा कि "पंचरात्रम्" में उल्लेख हैः –

**"अग्नितग्निभयादेष भीतैर्निवार्स्यते द्विजैः।"**
**"संर्वैरन्तः पुरैः सार्ध प्रीत्या प्रात्तेषु राजसु।**
**यज्ञो दुर्योधनस्यैव कुरुराजस्य वर्तते।।"**
**"स्वस्तत्र भवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः।**
**कल्पविशेषेण निर्वधन क्रियामिच्छन्ति पितरः।।"**

"कल पितरों का वार्षिक श्राद्ध है। ऐसे अवसर पर पितृगण उत्तम पिण्ड की आशा रखते हैं।" उक्त वचन से यह सिद्ध होता है कि उस समय अत्यन्त समृद्धि से श्राद्ध का अनुष्ठान होता था। उसी स्थल पर परिपूर्णतया श्राद्ध करने में असमर्थ श्री रामचन्द्र जी खेद भी प्रकट करते हैं, तभी सीता जी कहती हैं–

"भरत तो समृद्धिपूर्वक श्राद्ध करेंगे ही, आप फलोदक से ही श्राद्ध कर लें। इसी से पिता जी संतुष्ट हो जायेंगे।"

भास के नाटकों में गृहस्थों द्वारा चौराहों पर बलि देने का चित्रण मिलता है। "चारुदत्तम्" नाटक में चारुदत्त विदूषक को मातृकाओं के लिए बलि चढ़ाने को कहता है और यह भी कहता है कि यथाविभव पूजन करो। देवतागण भक्ति से प्रसन्न होते हैं।

गृहस्थों द्वारा पितरों, ऋषियों आदि के तर्पण का ज्ञान होता है। पुत्र के द्वारा प्रदत्त तर्पण की अभिलाषा पितर लोग करते थे। "उरुभंगम्" नाटक में धृतराष्ट्र पुत्रदत्त तर्पण के अयोग्य होने के कारण गहरा खेद प्रकट करता है।

इस प्रकार जब हम भास के नाटकों में गृहस्थाश्रम व्यवस्था का पर्यालोचन करते हैं, तो उसमें कुछ वैदिक युग और कुछ पौराणिक

युग का समुन्मेष झलकता है और यत्र–तत्र तान्त्रिक कृत्यों का भी दर्शन होता है।

भास के नाटकों के पर्यवेक्षण से निष्कर्ष निकलता है कि उस समय वानप्रस्थ– व्यवस्था उज्जीवित थी। "प्रतिमानाटकम्" के प्रथम अंक में चेटी कहती है कि–

**भट्टिनि! एवं मया श्रुतम्। भर्तृदारकामभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति।**

"महाराज दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्र को राज्याभिषिक्त करके वन में जायेंगे।" चेटी के उक्त वचन से यह सिद्ध होता है कि लोग पुत्र को गृह्यभार सौंप कर वन में जाकर वानप्रस्थ– आश्रम स्वीकार करते थे।

द्वितीय अंक में– "मेरे पूर्वज जिस धर्म को वृद्धावस्था में करते थे उसे मैं अभी करूँगा।"

यह राम की उक्ति वार्धक्य में वन–सम्प्राप्ति पूर्वक वानप्रस्थ आश्रम को ही ध्वनित करती है। "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक में पदमावती के भाई महाराज दर्शक की राजमाता को आश्रमस्थ कहा गया है, जिससे सिद्ध होता है कि पति के न रहने पर स्त्रियाँ भी वृद्धावस्था में अकेली जंगल में आश्रमस्थ होकर मुनिवृत्ति में तपस्या, भजन आदि किया करती थीं।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भास के समय में आश्रम पद्धति की दृढ़ थी। वैदिककालानुसार भले ही सत्रादि अनुष्ठान न होते हों तब भी सामान्य जन में गृहत्याग के अनन्तर आश्रम में ही रहकर भजन, साधना आदि की प्रवृत्ति प्राप्त होती थी।

**संदर्भ–ग्रन्थ**


1. स्वप्नवासवदत्तम् अंक प्रथम।
2. पंचरात्रम्, प्रथम अंक, पृष्ठ–8
3. पंचरात्रम्, प्रथम अंक, श्लोक–2
4. प्रतिमानाटकम्, पृष्ठ–134
5. प्रतिमानाटकम्, पंचम अंक, पृष्ठ–155
6. वही, पृष्ठ 156
7. वही पृष्ठ 163
8. चारुदत्तम्, पृष्ठ 29
9. उरुभंगम्, पृष्ठ 35
10. प्रतिमानाटकम्, पृष्ठ–24
11. प्रतिमानाटकम्, पृष्ठ–49
12. स्वप्नवासवदत्तम्, पृष्ठ 16
13. प्रतिमानाटकम्
14. स्वप्नवासवदत्तम्, अंक एक श्लोक 9